Chapter पन्द्रह

राजा पृथु की उत्पत्ति और राज्याभिषेक

मैत्रेय उवाच
अथ तस्य पुनर्विप्रैरपुत्रस्य महीपतेः ।
बाहुभ्यां मथ्यमानाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥ १ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने आगे कहा; अथ—इस प्रकार; तस्य—उसका; पुनः—फिर; विप्रैः—ब्राह्मणों द्वारा; अपुत्रस्य—पुत्रहीन; महीपतेः—राजा की; बाहुभ्याम्—बाँहों से; मथ्यमानाभ्याम्—मंथन करने से; मिथुनम्—युग्म; समपद्यत—उत्पन्न हुआ।

मैत्रेय ऋषि ने आगे कहा : हे विदुर, इस प्रकार ब्राह्मण तथा ऋषियों ने राजा वेन के मृत शरीर की दोनों बाहुओं का भी मंथन किया। फलस्वरूप उसकी बाँहों से एक स्त्री तथा एक पुरुष का जोड़ा उत्पन्न हुआ।

तद्दृष्ट्वा मिथुनं जातमृषयो ब्रह्मवादिनः ।
ऊचुः परमसन्तुष्टा विदित्वा भगवत्कलाम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तत्—उस; दृष्ट्वा—देखकर; मिथुनम्—युग्म को; जातम्—उत्पन्न; ऋषयः—ऋषियों ने; ब्रह्म-वादिनः—वैदिक ज्ञान में अत्यन्त पारंगत; ऊचुः—कहा; परम—अत्यधिक; सन्तुष्टाः—प्रसन्न; विदित्वा—जानकर; भगवत्—भगवान् का; कलाम्—विस्तार।

ऋषिगण वैदिक ज्ञान में पारंगत थे। जब उन्होंने वेन की बाहुओं से एक स्त्री तथा पुरुष को उत्पन्न देखा, तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए क्योंकि वे जान गये कि यह युगल (दम्पति) भगवान् विष्णु के पूर्णांश का विस्तार है।

तात्पर्य : वैदिक ज्ञान में पारंगत ऋषियों तथा विद्वानों ने जो विधि अपनाई थी, वह पूर्ण थी। उन्होंने राजा वेन के समस्त पापों के फल को पहले बाहुक की उत्पत्ति द्वारा समाप्त कर दिया, जिसका वर्णन पिछले अध्याय में हो चुका है और फिर जब वेन का शरीर शुद्ध हो गया तो इसमें से एक स्त्री-पुरुष युग्म प्रकट हुआ और ऋषिगण जान गये कि वह भगवान् विष्णु का ही विस्तार है। निस्सन्देह, यह विस्तार *विष्णु-तत्त्व* न था, वरन् विष्णु का ही एक शक्ति-प्राप्त विस्तार था जिसे *आवेश* कहते हैं।

ऋषय ऊचुः
एष विष्णोर्भगवतः कला भुवनपालिनी ।

इयं च लक्ष्म्याः सम्भूतिः पुरुषस्यानपायिनी ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

ऋषयः ऊचुः—ऋषियों ने कहा; एषः—यह नर; विष्णोः—भगवान् विष्णु का; भगवतः—भगवान् का; कला—विस्तार; भुवन-पालिनी—जगत का पालन करनेवाली; इयम्—यह स्त्री; च—भी; लक्ष्म्याः—लक्ष्मी की; सम्भूतिः—विस्तार; पुरुषस्य—भगवान् की; अनपायिनी—अभिन्न।

ऋषियों ने कहा : यह पुरुष तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का पालन करनेवाले भगवान् विष्णु की शक्ति का अंश है और यह स्त्री भगवान् विष्णु से कभी अलग न होनेवाली एवं सम्पत्ति की देवी, लक्ष्मी का अंश है।

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् और लक्ष्मी जी के कभी भी अलग न रहने का महत्त्व स्पष्ट रूप से वर्णित है। भौतिक जगत में लोग सम्पत्ति की देवी को अत्यधिक चाहते हैं और सम्पत्ति के रूप में उसकी कृपा प्राप्त करना चाहते हैं। किन्तु उन्हें यह जान लेना चाहिए कि सम्पत्ति की देवी भगवान् विष्णु से पृथक् नहीं हो सकतीं। भौतिकतावादियों को समझ लेना होगा कि सम्पत्ति की देवी की पूजा भगवान् विष्णु के साथ-साथ की जानी चाहिए और उन्हें भिन्न नहीं समझा जाना चाहिए। सम्पत्ति की देवी की कृपा चाहनेवाले भौतिकवादियों को भौतिक ऐश्वर्य को बनाये रखने के लिए विष्णु तथा लक्ष्मी दोनों की साथ-साथ पूजा करनी चाहिए। यदि कोई भौतिकतावादी पुरुष रावण की नीति अपना कर सीता को भगवान् रामचन्द्र से विलग करना चाहता है, तो उसका सर्वनाश हो जाएगा। जो लोग सम्पत्ति की देवी की कृपा से इस संसार में धनवान बन गये हैं, उन्हें चाहिए कि वे भगवान् की सेवा में अपनी सम्पत्ति लगाएँ। इस प्रकार वे बिना किसी उपद्रव के अपनी ऐश्वर्यमयी स्थिति बनाये रख सकते हैं।

अयं तु प्रथमो राज्ञां पुमान्प्रथयिता यशः ।
पृथुर्नाम महाराजो भविष्यति पृथुश्रवाः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

अयम्—यह; तु—तब; प्रथमः—प्रथम; राज्ञाम्—राजाओं का; पुमान्—नर; प्रथयिता—विस्तार करेगा; यशः—ख्याति; पृथुः—महाराज पृथु; नाम—नामक; महा-राजः—महान् राजा; भविष्यति—होगा; पृथु-श्रवाः—व्यापक ख्याति का।

इन दोनों में से, जो नर है, वह अपने यश को विश्व भर में फैला सकेगा। उसका नाम पृथु होगा। निस्सन्देह, वह राजाओं में सबसे पहला राजा होगा।

तात्पर्य : भगवान् के अनेक प्रकार के अवतार होते हैं। शास्त्रों में कहा गया है कि गरुड़ (विष्णु-वाहन), शिव तथा अनन्त ये सभी भगवान् के ब्रह्मरूप के शक्तिमान अवतार हैं। इसी प्रकार स्वर्ग का

राजा शचीपति अर्थात् इन्द्र, भगवान् के काम-रूप के अवतार हैं। अनिरुद्ध भगवान् के मन के अवतार हैं। इसी प्रकार राजा पृथु भगवान् की शासन-शक्ति के अवतार हैं। इस प्रकार साधु पुरुषों तथा ऋषियों ने राजा पृथु के भावी कार्यों की भविष्यवाणी कर दी, जो भगवान् के अंशावतार रूप थे।

इयं च सुदती देवी गुणभूषणभूषणा ।
अर्चिर्नाम वरारोहा पृथुमेवावरुन्धती ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

इयम्—यह स्त्री; च—तथा; सु-दती—सुन्दर दाँतों वाली; देवी—सम्पत्ति की देवी; गुण—उत्तम गुणों के कारण; भूषण—आभूषण; भूषणा—विभूषित करनेवाली; अर्चिः—अर्चि; नाम—नामक; वर-आरोहा—अत्यन्त सुन्दर; पृथुम्—राजा पृथु को; एव—निश्चय ही; अवरुन्धती—अत्यन्त आसक्त रहनेवाली।

सुन्दर दाँतों वाली स्त्री उत्तम गुणों से युक्त होने के कारण पहने गये आभूषणों को भी विभूषित करनेवाली होगी। उसका नाम अर्चि होगा और भविष्य में वह राजा पृथु को अपना पति स्वीकार करेगी।

एष साक्षाद्धरेरंशो जातो लोकरिरक्षया ।
इयं च तत्परा हि श्रीरनुजज्ञेऽनपायिनी ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

एषः—यह नर; साक्षात्—प्रत्यक्ष; हरेः—भगवान् का; अंशः—आंशिक प्रतिनिधि; जातः—उत्पन्न; लोक—सारा विश्व; रिरक्षया—रक्षा करने की इच्छा से; इयम्—यह स्त्री; च—भी; तत्-परा—उससे अत्यधिक आसक्त; हि—निश्चय ही; श्रीः—सम्पत्ति की देवी ने; अनुजज्ञे—जन्म लिया; अनपायिनी—अभिन्न।

राजा पृथु के रूप में, भगवान् अपनी शक्ति के एक अंश से संसार के लोगों की रक्षा के लिए प्रकट हुए हैं। सम्पत्ति की देवी भगवान् की निरन्तर सहचरी हैं, अतः वे अंश रूप में राजा पृथु की रानी बनने के लिए अर्चि रूप में अवतरित हुई हैं।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* में भगवान् का कथन है कि जब किसी में कोई विलक्षण शक्ति दिखे तो समझना चाहिए कि भगवान् का विशिष्ट आंशिक प्रतिनिधित्व उपस्थित हो रहा है। ऐसे असंख्य महापुरुष हैं, किन्तु वे साक्षात् विष्णु-तत्व के अंश नहीं हैं। अनेक जीवात्माओं की गणना शक्ति-तत्वों में की जाती है। विशिष्ट कार्यों के लिए शक्ति-प्राप्त ऐसे अवतार *शक्त्यावेश-अवतार* कहलाते हैं। राजा पृथु भगवान् के ऐसे ही शक्त्यावेश अवतार थे। इसी प्रकार राजा पृथु की पत्नी अर्चि भी लक्ष्मी जी की

शक्त्यावेश-अवतार थीं।

मैत्रेय उवाच
प्रशंसन्ति स्म तं विप्रा गन्धर्वप्रवरा जगुः ।
मुमुचुः सुमनोधाराः सिद्धा नृत्यन्ति स्वःस्त्रियः ॥ ७॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने कहा; प्रशंसन्ति स्म—प्रशंसा करते थे; तम्—उसका (पृथु); विप्राः—समस्त ब्राह्मण; गन्धर्व-प्रवराः—गन्धर्वों में श्रेष्ठ; जगुः—जप किया; मुमुचुः—छोड़ी, फेंकी; सुमनः-धाराः—पुष्पों की वर्षा; सिद्धाः—सिद्धलोक के पुरुष; नृत्यन्ति—नाच रही थीं; स्वः—स्वर्गलोक की; स्त्रियः—स्त्रियाँ (अप्सराएँ)।

महर्षि मैत्रेय ने आगे कहा : हे विदुर जी, उस समय समस्त ब्राह्मणों ने राजा पृथु की प्रशंसा और स्तुति की और गन्धर्वलोक के सर्वश्रेष्ठ गायकों ने उनकी महिमा का गायन किया। सिद्धलोक के वासियों ने उन पर पुष्पवर्षा की और स्वर्ग की सुन्दरियाँ (अप्सराएँ) भाव विभोर होकर नाचने लगीं।

शङ्खतूर्यमृदङ्गाद्या नेदुर्दुन्दुभयो दिवि ।
तत्र सर्व उपाजग्मुर्देवर्षिपितृणां गणाः ॥ ८॥

शब्दार्थ

शङ्ख—शंख; तूर्य—तुरही; मृदङ्ग—ढोल; आद्याः—इत्यादि; नेदुः—बजने लगे; दुन्दुभयः—दुन्दुभियाँ; दिवि—अन्तरिक्ष में; तत्र—वहाँ; सर्वे—सभी; उपाजग्मुः—आये; देव-ऋषि—देवता तथा मुनि; पितृणाम्—पितरों के; गणाः—समूह।

अन्तरिक्ष में शंख, दुंदुभि, तुरही तथा मृदङ्ग बजने लगे। बड़े-बड़े मुनि, पितरगण तथा स्वर्ग के पुरुष विभिन्न लोकों से पृथ्वी पर आ गये।

ब्रह्मा जगद्गुरुर्देवैः सहासृत्य सुरेश्वरैः ।
वैन्यस्य दक्षिणे हस्ते दृष्ट्वा चिह्नं गदाभृतः ॥ ९॥
पादयोररविन्दं च तं वै मेने हरेः कलाम् ।
यस्याप्रतिहतं चक्रमंशः स परमेष्ठिनः ॥ १०॥

शब्दार्थ

ब्रह्मा—ब्रह्माजी; जगत्-गुरुः—ब्रह्माण्ड के स्वामी; देवैः—देवताओं द्वारा; सह—साथ में; आसृत्य—आकर; सुर-ईश्वरैः—समस्त स्वर्गों के प्रमुखों सहित; वैन्यस्य—वेन के पुत्र महाराज पृथु के; दक्षिणे—दाहिने; हस्ते—हाथ में; दृष्ट्वा—देखकर; चिह्नम्—चिह्न; गदा-भृतः—गदाधारी भगवान् विष्णु के; पादयोः—दोनों पाँवों पर; अरविन्दम्—कमल; च—भी; तम्—उसको; वै—निश्चय ही; मेने—वह समझ गया; हरेः—भगवान् के; कलाम्—अंश; यस्य—जिसका; अप्रतिहतम्—अपराजेय; चक्रम्—चक्र; अंशः—आंशिक स्वरूप; सः—वह; परमेष्ठिनः—भगवान् का।

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के स्वामी ब्रह्मा, देवताओं तथा उनके प्रमुखों सहित, वहाँ पधारे। राजा पृथु

के दाहिने हाथ में विष्णु भगवान् की हथेली की रेखाएँ तथा चरण के तलवों पर कमल का चिह्न देखकर ब्रह्मा समझ गये कि राजा पृथु भगवान् के अंश-स्वरूप थे। जिसकी हथेली में चक्र तथा अन्य ऐसी रेखाएँ हों, उसे परमेश्वर का अंश या अवतार समझना चाहिए।

तात्पर्य : भगवान् के अवतार की पहचान करने की एक विधि होती है। आजकल किसी भी धूर्त को अवतार मानने का प्रचलन है, किन्तु इस घटना से हम देख सकते हैं कि ब्रह्मा ने स्वयं राजा पृथु के हाथों तथा पाँवों की परीक्षा विशिष्ट चिह्नों के लिए की। अपनी भविष्यवाणियों में विद्वान् मुनियों तथा ब्राह्मणों ने पृथु महाराज को भगवान् का अंश माना। किन्तु श्रीकृष्ण जब वर्तमान थे तो एक राजा ने अपने को वासुदेव घोषित कर दिया; फलत: भगवान् कृष्ण ने उसे मार डाला। किसी को भगवान् का अवतार मानने के पूर्व शास्त्रों में वर्णित लक्षणों के अनुसार उसके स्वरूप की पुष्टि की जानी चाहिए। इन लक्षणों के अभाव में भगवान् का अवतार कहलाने वाले छद्मवेषी का वध कर देना चाहिए।

तस्याभिषेक आरब्धो ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभि: ।
आभिषेचनिकान्यस्मै आजह्रु: सर्वतो जना: ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसका; अभिषेक:—राजतिलक; आरब्ध:—आयोजन किया गया; ब्राह्मणै:—ब्राह्मणों द्वारा; ब्रह्म-वादिभि:—वैदिक अनुष्ठानों को माननेवाले; आभिषेचनिकानि—उत्सव के लिए आवश्यक विविध सामग्री; अस्मै—उसको; आजह्रु:—एकत्र किया; सर्वत:—चारों ओर; जना:—मनुष्यों ने।

तब ब्रह्मवादी ब्राह्मणों ने राजा के अभिषेक का सारा आयोजन किया। उत्सव में लगनेवाली विभिन्न सामग्रियों का संग्रह चारों दिशाओं के लोगों ने किया। इस प्रकार सब कुछ पूरा हो गया।

सरित्समुद्रा गिरयो नागा गाव: खगा मृगा: ।
द्यौ: क्षिति: सर्वभूतानि समाजह्रुरुपायनम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

सरित्—नदियाँ; समुद्रा:—समुद्र; गिरय:—पर्वत; नागा:—सर्प; गाव:—गाएँ; खगा:—पक्षी; मृगा:—पशु; द्यौ:—आकाश; क्षिति:—पृथ्वी; सर्व-भूतानि—समस्त जीवात्माएँ; समाजह्रु:—एकत्र किया; उपायनम्—विभिन्न प्रकार के उपहार।

अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार नदी, समुद्र, पर्वत, सर्प, गाय, पक्षी, पशु, स्वर्गलोक, पृथ्वीलोक तथा अन्य सभी लोकों की जीवात्माओं ने राजा को भेंट करने के लिए विविध उपहार एकत्रित किये।

सोऽभिषिक्तो महाराजः सुवासाः साध्वलङ्कृतः ।
पत्न्यार्चिषालङ्कृतया विरेजेऽग्निरिवापरः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

सः—राजा; अभिषिक्तः—अभिषेक हो जाने पर; महाराजः—महाराज पृथु; सु-वासाः—सुन्दर वस्त्रों से सज्जित; साधु-अलङ्कृतः—आभूषणों से अत्यधिक विभूषित; पत्न्या—अपनी पत्नी; अर्चिषा—अर्चि के साथ; अलङ्कृतया—आभूषणों से सजाकर; विरेजे—विराज रहे थे; अग्निः—अग्नि; इव—सदृश; अपरः—दूसरा।

इस प्रकार वस्त्रों तथा आभूषणों से सुन्दर रूप से अलंकृत महाराज पृथु का अभिषेक किया गया और उन्हें सिंहासन पर बैठाया गया। वे सुन्दर आभूषणों से सज्जित अपनी पत्नी अर्चि के साथ, अग्नि के समान लग रहे थे।

तस्मै जहार धनदो हैमं वीर वरासनम् ।
वरुणः सलिलस्रावमातपत्रं शशिप्रभम् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तस्मै—उसको; जहार—भेंट दिया; धन-दः—देवताओं के कोषाध्यक्ष (कुबेर) ने; हैमम्—सोने का बना हुआ; वीर—हे विदुर; वर-आसनम्—राज-सिंहासन; वरुणः—वरुणदेवः; सलिल-स्रावम्—जल की फुहारें बरसाते हुए; आतपत्रम्—छाता; शशि-प्रभम्—चन्द्रमा के समान प्रकाशयुक्त।

ऋषि ने आगे कहा, हे विदुर, कुबेर ने महान् राजा पृथु को सुनहरा सिंहासन भेंट किया; वरुणदेव ने एक छाता प्रदान किया जिससे निरन्तर जल की फुहारें निकल रही थीं और जो चन्द्रमा के समान प्रकाशमान था।

वायुश्च वालव्यजने धर्मः कीर्तिमयीं स्रजम् ।
इन्द्रः किरीटमुत्कृष्टं दण्डं संयमनं यमः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

वायुः—वायुदेव ने; च—भी; वाल-व्यजने—बालों के बने दो चँवर; धर्मः—धर्मराज ने; कीर्ति-मयीम्—नाम तथा यश को बढ़ानेवाले; स्रजम्—हार; इन्द्रः—स्वर्ग के राजा इन्द्र ने; किरीटम्—मुकुट; उत्कृष्टम्—अत्यन्त मूल्यवान; दण्डम्—राजदण्ड; संयमनम्—संसार पर शासन करने के लिए; यमः—मृत्यु के अधीक्षक ने।

वायु ने बालों से बने दो चामर, धर्म ने यश को बढ़ानेवाला पुष्पहार, स्वर्ग के राजा इन्द्र ने मूल्यवान मुकुट तथा यमराज ने विश्व पर शासन करने के लिए एक राजदण्ड प्रदान किया।

ब्रह्मा ब्रह्ममयं वर्म भारती हारमुत्तमम् ।

हरिः सुदर्शनं चक्रं तत्पत्न्यव्याहतां श्रियम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्मा—ब्रह्मा ने; ब्रह्म-मयम्—आत्मज्ञान से निर्मित; वर्म—कवच; भारती—विद्या की देवी ने; हारम्—हार; उत्तमम्—दिव्य; हरिः—भगवान् ने; सुदर्शनम् चक्रम्—सुदर्शन चक्र; तत्-पत्नी—उनकी पत्नी (लक्ष्मी) ने; अव्याहताम्—अविचल; श्रियम्—सुन्दरता तथा ऐश्वर्य।

ब्रह्माजी ने राजा पृथु को आत्मज्ञान से निर्मित कवच भेंट किया। ब्रह्मा की पत्नी भारती (सरस्वती) ने दिव्य हार दिया। भगवान् विष्णु ने सुदर्शन-चक्र दिया और उनकी पत्नी, ऐश्वर्य की देवी लक्ष्मी जी, ने उन्हें अविचल ऐश्वर्य प्रदान किया।

तात्पर्य : सभी देवताओं ने राजा पृथु को तरह-तरह की भेंटें दीं। हरि ने, जो भगवान् के अवतार हैं और उपेन्द्र कहलाते हैं, राजा को सुदर्शन चक्र भेंट किया। स्मरण रहे कि यह सुदर्शन चक्र भगवान् कृष्ण या विष्णु के सुदर्शन चक्र जैसा नहीं है। चूँकि महाराज पृथु भगवान् के अंश-रूप थे, अतः उन्हें जो सुदर्शन चक्र भेंट में दिया गया, वह मूल सुदर्शन चक्र की आंशिक शक्ति से युक्त था।

दशचन्द्रमसिं रुद्रः शतचन्द्रं तथाम्बिका ।
सोमोऽमृतमयानश्वांस्त्वष्टा रूपाश्रयं रथम् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

दश-चन्द्रम्—दस चन्द्रमाओं से भूषित; असिम्—तलवार; रुद्रः—शिवजी ने; शत-चन्द्रम्—एक सौ चन्द्रमाओं से सुशोभित; तथा—उसी तरह से; अम्बिका—देवी दुर्गा ने; सोमः—चन्द्रदेव; अमृत-मयान्—अमृत से युक्त; अश्वान्—घोड़े; त्वष्टा—विश्वकर्मा ने; रूप-आश्रयम्—अत्यन्त सुन्दर; रथम्—रथ।

शिवजी ने दस चन्द्रमाओं से अंकित कोष (म्यान) वाली तलवार भेंट की और देवी दुर्गा ने एक सौ चन्द्रमाओं से अंकित एक ढाल भेंट की। चन्द्रदेव ने उन्हें अमृतमय घोड़े तथा विश्वकर्मा ने एक अत्यन्त सुन्दर रथ प्रदान किया।

अग्निराजगवं चापं सूर्यो रश्मिमयानिषून् ।
भूः पादुके योगमय्यौ द्यौः पुष्पावलिमन्वहम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

अग्निः—अग्निदेव ने; आज-गवम्—बकरे तथा गायों के सींगों से बने; चापम्—धनुष; सूर्यः—सूर्यदेव ने; रश्मि-मयान्—सूर्य की किरणों के समान चमकता; इषून्—तीर; भूः—भूमि ने; पादुके—खड़ाऊँ; योग-मय्यौ—योगशक्ति से युक्त; द्यौः—आकाश के देवताओं ने; पुष्प—फूलों की; आवलिम्—भेंट; अनु-अहम्—दिन-प्रति-दिन।

अग्निदेव ने बकरों तथा गौंओं के सीगों से निर्मित धनुष, सूर्यदेव ने सूर्यप्रकाश के समान तेजवान बाण, भूर्लोक के प्रमुख देव ने योगशक्ति-सम्पन्न चरण-पादुकाएँ तथा आकाश के

देवताओं ने पुनः पुनः पुष्पों की भेंटें प्रदान की।

तात्पर्य : इस श्लोक में बताया गया है कि राजा की पादुकाएँ योग-शक्ति से युक्त थीं (*पादुके योगमय्यौ*)। इस प्रकार पादुकाएँ पहनते ही राजा जहाँ चाहे जा सकता था। योगी लोग किसी भी समय अपनी इच्छानुसार एक स्थान से दूसरे को चले जा सकते हैं। ऐसी ही शक्ति राजा पृथु की पादुकाओं में थी।

नाट्यं सुगीतं वादित्रमन्तर्धानं च खेचराः ।
ऋषयश्चाशिषः सत्याः समुद्रः शङ्खमात्मजम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

नाट्यम्—नाटक की कला; सु-गीतम्—मधुर गायन की कला; वादित्रम्—वाद्ययंत्र बजाने की कला; अन्तर्धानम्—छिपने की कला; च—भी; खे-चराः—आकाश-मार्ग में यात्रा करनेवाले देवताओं ने; ऋषयः—ऋषिगणों ने; च—भी; आशिषः—आशीर्वाद; सत्याः—अमोघ; समुद्रः—समुद्र के देवता ने; शङ्खम्—शंख; आत्म-जम्—अपने में से उत्पन्न।

गगनचारी देवताओं ने राजा पृथु को नाटक, संगीत, वाद्ययंत्र तथा इच्छानुसार अन्तर्धान होने की कला प्रदान की। ऋषियों ने भी उन्हें अमोघ आशीर्वाद दिये। समुद्र ने स्वयं सागर से उत्पन्न शंख भेंट किया।

सिन्धवः पर्वता नद्यो रथवीथीर्महात्मनः ।
सूतोऽथ मागधो वन्दी तं स्तोतुमुपतस्थिरे ॥ २० ॥

शब्दार्थ

सिन्धवः—समुद्रों; पर्वताः—पर्वतों; नद्यः—नदियों ने; रथ-वीथीः—रथ जाने के लिए मार्ग; महा-आत्मनः—महापुरुष का; सूतः—स्तुति करनेवाला; अथ—तब; मागधः—भाट; वन्दी—स्तुति करनेवाला; तम्—उसको; स्तोतुम्—बड़ाई करने के लिए; उपतस्थिरे—स्वयं उपस्थित हुए।

समुद्रों, पर्वतों, तथा नदियों ने उन्हें किसी अवरोध के बिना रथ हाँकने के लिए मार्ग प्रदान किया। सूत, मागध तथा वन्दीजनों ने प्रार्थनाएँ तथा स्तुतियाँ कीं। वे सभी उनके समक्ष अपनी अपनी सेवाएँ करने के लिए उपस्थित हो गये।

स्तावकांस्तानभिप्रेत्य पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ।
मेघनिर्ह्रादया वाचा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

स्तावकान्—स्तुति करने वाले; तान्—उन व्यक्तियों को; अभिप्रेत्य—देखकर, समझकर; पृथुः—राजा पृथु; वैन्यः—वेन का पुत्र; प्रताप-वान्—अत्यन्त शक्तिशाली; मेघ-निर्ह्रादया—मेघ-गर्जना के समान गम्भीर; वाचा—वाणी से; प्रहसन्—हँसते हुए; इदम्—यह; अब्रवीत्—बोला।

जब महान् शक्तिशाली वेन के पुत्र राजा पृथु ने अपने समक्ष इन सबों को देखा, तो वे उन्हें बधाई देने के लिए हँसे और मेघ-गर्जना जैसी गम्भीर वाणी में इस प्रकार बोले।

पृथुरुवाच
भोः सूत हे मागध सौम्य वन्दि-
ल्लोकेऽधुनास्पष्टगुणस्य मे स्यात् ।
किमाश्रयो मे स्तव एष योज्यतां
मा मय्यभूवन्वितथा गिरो वः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

पृथुः उवाच—राजा पृथु ने कहा; भोः सूत—हे सूत; हे मागध—हे मागध; सौम्य—भद्र; वन्दिन्—हे प्रार्थनारत भक्त; लोके—इस जगत में; अधुना—इस समय; अस्पष्ट—अप्रकट; गुणस्य—जिसके गुण; मे—मेरे; स्यात्—होवें; किम्—क्यों; आश्रयः—शरण; मे—मेरा; स्तवः—प्रशंसा; एषः—यह; योज्यताम्—प्रयुक्त हो सके; मा—कभी नहीं; मयि—मुझमें; अभूवन्—थे; वितथाः—वृथा; गिरः—शब्द; वः—तुम्हारे।

राजा पृथु ने कहा : हे भद्र सूत, मागध तथा अन्य प्रार्थनारत भक्तो, आपने मुझमें जिन गुणों का बखान किया है, वे तो अभी मुझमें प्रकट नहीं हुए। तो फिर आप मेरे इन गुणों की क्यों प्रशंसा कर रहे हैं? मैं नहीं चाहता कि मेरे विषय में कहे गये शब्द वृथा जाएँ। अतः अच्छा हो, यदि इन्हें किसी दूसरे को अर्पित करें।

तात्पर्य : सूत, मागध तथा वन्दीजनों द्वारा की गई प्रार्थनाएँ तथा प्रशंसाएँ महाराज पृथु के दैवी गुणों को बताने वाली थीं, क्योंकि वे भगवान् के *शक्त्यावेश* अवतार थे। चूँकि ये गुण अभी प्रकट नहीं हुए थे, अतः राजा पृथु ने भक्तों से नम्रतापूर्वक पूछा कि वे उनकी इतनी अधिक प्रशंसा क्यों कर रहे हैं। वे नहीं चाहते थे कि जब तक ये गुण वास्तव में आ न जाँय, तब तक कोई उनकी प्रशंसा करे। उनकी प्रार्थनाओं का किया जाना उपयुक्त था, क्योंकि वे ईश्वर के अवतार थे, किन्तु उन्होंने आगाह किया कि दैवी गुणों से सम्पन्न हुए बिना किसी को भगवान् का अवतार नहीं मान लेना चाहिए। आजकल भगवान् के तथाकथित अनेक अवतार हैं, किन्तु ये धूर्त तथा निरे मूर्ख हैं, जिन्हें लोग ईश्वर का अवतार मान बैठते हैं यद्यपि ये दैवी गुणों से शून्य हैं। राजा पृथु ने चाहा की कि भावी गुणों से उनके प्रति प्रशंसात्मक शब्दों की पुष्टि हो सके। यद्यपि प्रार्थनाओं में कोई दोष न था, किन्तु पृथु

महाराज ने इंगित किया कि ऐसी स्तुतियाँ किसी अयोग्य पुरुष के प्रति न की जाँय जो अपने को भगवान् का अवतार बताता हो।

तस्मात्परोक्षेऽस्मदुपश्रुतान्यलं-
करिष्यथ स्तोत्रमपीच्यवाचः ।
सत्युत्तमश्लोकगुणानुवादे
जुगुप्सितं न स्तवयन्ति सभ्याः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—अतः; परोक्षे—निकट भविष्य में; अस्मत्—मेरा; उपश्रुतानि—कहे गये गुणों के विषय में; अलम्—पर्याप्त; करिष्यथ—तुम कर सकोगे; स्तोत्रम्—स्तुतियाँ; अपीच्य-वाचः—हे भद्र गायक; सति—समुचित कार्य होने से; उत्तम-श्लोक—श्रीभगवान् का; गुण—गुणों की; अनुवादे—विवेचना; जुगुप्सितम्—घृणित व्यक्ति को; न—कभी नहीं; स्तवयन्ति—स्तुति प्रदान करें; सभ्याः—भद्र लोग।

हे भद्र गायको, कालान्तर में वे गुण, जिनका तुम लोगों ने वर्णन किया है, जब वास्तव में प्रकट हो जाँय तब मेरी स्तुति करना। जो भद्रलोग भगवान् की प्रार्थना करते हैं, वे ऐसे गुणों को किसी ऐसे मनुष्य में थोपा नहीं करते, जिनमें सचमुच वे न पाए जाते हों।

तात्पर्य : भगवान् के भद्र भक्तों को यह पता रहता है कि कौन ईश्वर है और कौन नहीं। किन्तु अभक्त निर्विशेषवादी, जिन्हें ईश्वर का कोई ज्ञान नहीं है और जो कभी भी ईश्वर की प्रार्थना नहीं किया करते, सदैव मनुष्य को ईश्वर मानने तथा उसकी प्रार्थनाएँ करने में रुचि रखते हैं। एक भक्त तथा असुर में यही अन्तर है। असुर अपने देवताओं को स्वयं गढ़ लेते हैं या स्वयं को ईश्वर मान लेते हैं और रावण तथा हिरण्यकशिपु के पदचिह्नों का अनुसरण करते हैं। यद्यपि पृथु महाराज वास्तव में भगवान् के अवतार थे, किन्तु उन्होंने उन प्रशंसात्मक स्तुतियों को अस्वीकार कर दिया, क्योंकि उनमें परम पुरुष के गुणों का अभी उदय नहीं हुआ था। वे इस पर बल देना चाहते थे कि यदि किसी में वास्तविक गुण न हों तो उन्हें अपने अनुयायियों या भक्तों को यशोगान नहीं करने देना चाहिए, भले ही ये गुण भविष्य में प्रकट होने वाले क्यों न हों। यदि ऐसा व्यक्ति, जो महापुरुषों के वास्तविक गुणों के न होते हुए भी अपने अनुयायियों से इस आशा में अपनी स्तुति कराता है, कि ऐसे गुण भविष्य में उसमें प्रकट हो जाएंगे, वास्तव में स्तुति नहीं, वरन् अपमान कराता है।

महद्गुणानात्मनि कर्तुमीशः
कः स्तावकैः स्तावयतेऽसतोऽपि ।
तेऽस्याभविष्यन्निति विप्रलब्धो
जनावहासं कुमतिर्न वेद ॥ २४॥

शब्दार्थ

महत्—महान; गुणान्—गुण; आत्मनि—अपने आप में; कर्तुम्—प्रकट करने के लिए; ईशः—सक्षम; कः—कौन; स्तावकैः—अनुयायियों द्वारा; स्तावयते—स्तुति कराता है; असतः—न होनेवाले; अपि—यद्यपि; ते—वे; अस्य—उसका; अभविष्यन्—हो सकता है; इति—इस प्रकार; विप्रलब्धः—ठगा गया; जन—लोगों का; अवहासम्—उपहास, अपमान; कुमतिः—मूर्ख; न—नहीं; वेद—जानता है।

भला ऐसे महान् गुणों को धारण करने में सक्षम बुद्धिमान पुरुष किस तरह अपने अनुयायियों को ऐसे गुणों की प्रशंसा करने देगा जो वास्तव में उसमें न हों? किसी मनुष्य की यह कह कर प्रशंसा करना कि यदि वह शिक्षित हो तो महान् विद्वान् या महापुरुष हो जाता है, ठगने के अतिरिक्त और क्या है? मूर्ख व्यक्ति जो ऐसी बड़ाई स्वीकार कर लेता है, वह यह नहीं जानता कि ऐसे शब्द उसके अपमान के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं।

तात्पर्य : पृथु महाराज भगवान् के अवतार थे जैसाकि ब्रह्माजी तथा अन्य देवताओं ने विविध प्रकार के स्वर्गीय उपहार देते हुए पुष्टि की थी। किन्तु तुरन्त अभिषिक्त होने के कारण उनमें दैवी गुणों का प्रस्फुटन नहीं हो सकता था, अतः वे भक्तों द्वारा की गई प्रशंसा को स्वीकार करने के लिए उद्यत न थे। तथाकथित ईश्वर के अवतारों को राजा पृथु के इस आचरण से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। दैवी गुणों से विहीन असुरों को अपने अनुयायियों की झूठी प्रशंसा ग्रहण नहीं करनी चाहिए।

प्रभवो ह्यात्मनः स्तोत्रं जुगुप्सन्त्यपि विश्रुताः ।
ह्रीमन्तः परमोदाराः पौरुषं वा विगर्हितम् ॥ २५॥

शब्दार्थ

प्रभवः—अत्यन्त पराक्रमी पुरुष; हि—निश्चय ही; आत्मनः—अपनी; स्तोत्रम्—प्रशंसा; जुगुप्सन्ति—नहीं चाहते; अपि—यद्यपि; विश्रुताः—अत्यन्त प्रसिद्ध; ह्री-मन्तः—सौम्य; परम-उदाराः—अत्यन्त उदार पुरुष; पौरुषम्—शक्तिशाली कार्य; वा—भी; विगर्हितम्—निन्दनीय।

जिस प्रकार कोई सम्मानित तथा उदार व्यक्ति अपने निन्दनीय कार्यों के विषय में सुनना नहीं चाहता, उसी प्रकार अत्यन्त प्रसिद्ध तथा पराक्रमी पुरुष अपनी प्रशंसा सुनना पसन्द नहीं करता।

वयं त्वविदिता लोके सूताद्यापि वरीमभिः ।

कर्मभि: कथमात्मानं गापयिष्याम बालवत् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

वयम्—हम; तु—तब; अविदिता:—अप्रसिद्ध; लोके—संसार में; सूत-आद्य—हे सूत इत्यादि जनो; अपि—इस समय तुरन्त; वरीमभि:—महान्, प्रशंसनीय; कर्मभि:—कर्मों से; कथम्—कैसे; आत्मानम्—अपने आप; गापयिष्याम—स्तुति करने के लिए लगा लूँ; बालवत्—बच्चों के समान।

राजा पृथु ने आगे कहा : हे सूत आदि भक्तो, इस समय मैं अपने व्यक्तिगत गुणों के लिए अधिक प्रसिद्ध नहीं हूँ क्योंकि अभी तो मैंने ऐसा कुछ किया नहीं जिसकी तुम लोग प्रशंसा कर सको। अत: मैं बच्चों की तरह तुम लोगों से अपने कार्यों का गुणगान कैसे कराऊँ?

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कंध के अन्तर्गत ''राजा पृथु की उत्पत्ति और राज्या-भिषेक'' नामक पन्द्रहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।